P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

पूर्वी राजस्थान के प्रमुख संग्रहालयों में प्रदर्शित सांस्कृतिक निरंतरता के अवशेषों का संक्षिप्त अध्ययन

रूचिका सैनी
शोधार्थी,
इतिहास विभाग,
रा.ऋ.भृ.मत्स्य विश्वविद्यालय
अलवर, राजस्थान, भारत

सारांश

वर्तमान में आधुनिकीकरण के दौर में विभिन्न समुदाय अपनी सांस्कृतिक पहचान खोते जा रहे है। पश्चात्य संस्कृति के अंधाधुन्ध अनुसरण के कारण जन–संप्रदाय ने अपनी ऐतिहासिकता एवं सांस्कृतिक विरासत को भुला दिया है, इन्हीं स्मृतियों को संजोये रखने में संग्रहालयों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

ऐलिजाबेथ क्रुक ने अपनी पुस्तक में संग्रहालयों तथा सार्वजनिक लोगों के बीच सम्बन्धों पर प्रकाश डाला है। वह कहती है कि अगर संग्रहालयों को अपने लक्ष्य को हासिल करना है, तो संग्रहालयों में विभिन्न समुदाय से जुड़ी सम्पूर्ण जानकारी होनी चाहिए, ताकि जनता को अपने स्वयं के इतिहास के बारे में जानने और स्वयं के इतिहास के बारे में जानने और दूसरों के बारे में जानने और दूसरों के इतिहास को समझने में सुविधा रहे।

थॉमस ने भी यह कहा कि संग्रहालय क्षेत्र तथा समुदाय अन्योन्याश्रितता का दोहरा रिश्ता है हालांकि यह बताना आसान नहीं किसे दूसरे की आवश्यकता ज्यादा है। संग्रहालय के प्रर्दशन हॉल में संरक्षित कलाकृतियों के आधार पर अपने इतिहास के बारे में जानकारी मिलती है। जैसे– अल्बर्ट हॉल, जयपुर संग्रहालय में विभिन्न सन्यासियों की मृणमूर्तियों को अलग–अलग योग–मुद्रा में दर्शाया गया है, इन मृणमूर्तियों से तत्कालीन समाज में योग के महत्व के विषय में जानकारी मिलती है।

इसी प्रकार संग्रहालय में प्रदर्शित धर्म, दर्शन, त्यौहार, मेले, संगीत, नृत्य, वास्तुकला, अस्त्र–शस्त्र, दस्तकारी, भाषा, साहित्य, शिक्षा की परम्परा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास और चित्रकला तत्कालीन जीवन का सुन्दर प्रतिबिम्ब है। संग्रहालय विभिन्न संस्कृतियों की पहचान को व्यक्त करने का एक साधन है। संग्रहालयों की सहज भूमिका उन समुदायों के लिए पहचान बनाने के लिए भी है, जो विरासत की खोज के लिए नेतृत्व कर रहे है। हालांकि सरकार संग्रहालय क्षेत्र के विकास पर व्यापक प्रभाव है सरकार संग्रहालयों के लिए नीतियाँ और दिशा–निर्देश जारी करती है। सामाजिक परिवेश और सामुदायिक भागीदारी के रूप में संग्रहालय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। जैसे– कलाकृतियों के संग्रह के माध्यम से सांस्कृतिक विरासत की प्रदर्शनी द्वारा विभिन्न समुदाय के इतिहास को समझाया जा सकता है। इस प्रकार जनता को अपने अतीत को जानकर अपनी सांस्कृतिक विरासत पर गर्व होता है। इस प्रकार सांस्कृतिक विरासत को आगे आने वाली पीढ़ी के लिए संग्रहालयों के रूप में सुरक्षित देखते है।

मुख्य शब्द : डे ऑव डैड, साम्बा, इण्डो–सारसैनिक वास्तुकला, इण्डो–इस्लामिक वास्तुकला, क्रिस्टल कलाकृतियां, बिदरी काम, भरवां जानवर, साद के गुलिस्तान, बोसान, अलवर स्कूल ऑफ पेंटर्स, कचहरी कलां, टेराकोटा, लिथोपॉपर्स, कामरा खास

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति की सबसे उल्लेखनीय बात यह रही कि इसकी प्राचीन कड़िया आधुनिक भारत तक एक सूत्र में बंधी रही। चीन को छोड़कर विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताएं– यूनानी मिश्र, मेसोपोटामिया इत्यादि अपनी महानता में तो कम न थी, किंतु इनका अपने अतीत से अलगाव था। सांस्कृतिक निरंतरता का जो तत्व भारत की सभ्यता में उपस्थित था, वह इन सभ्यताओं में अनुपस्थित था।

किंतु निरंतरता ने कभी भी नमनीयता या परिवर्तन को अस्वीकार नहीं किया। वस्तुतः यदि भारतीय संस्कृति सदियों तक प्रवाहित रही, जीवंत और गुंजायमान बनी रही, तो इसकी वजह यही थी कि इसने कभी भी किसी प्रकार

की हठधर्मिता प्रदर्शित न करते हुए सर्वदा नए विचारों और प्रभावों को आत्मसात किया और नए संयोग हेतु द्वार खोले रखे। ए०ल० बाशम ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति का इतिहास' की प्रस्तावना में उल्लेख किया है, "भारत हमेशा नियमित रूप से बदलता रहा।" जब हम भारत की संस्कृति की बात करते हैं तो विभिन्न आंदोलनों और संस्कृतियों को भी सामने रखते हैं, जिन्होंने सप्तरंगी इंद्रधनुष का रूप पा लिया है। इसमें वे संस्कृतियां शामिल हैं, जो प्रागैतिहासिक काल में विद्यमान थी, जो अस्थायी रूप से भारत के सम्पर्क में आईं, जो बाहर से आई और भारत में स्थायी रूप से घुल–मिल गई। इसके अतिरिक्त देश के बौद्धिक मंथन से निकले क्रांतिकारी आंदोलन भी समाहित हुए।

हमारी संस्कृति की प्रकृति यही रही है कि इसने सीमाओं को कभी स्वीकार नहीं किया। उसने एकता के लिए संघर्ष किए है। यह संस्कृति जीवन की प्रयोगशाला का साधारण यंत्र मात्र नहीं है। न वह केवल पाषाण–मात्र है, जिसकी बनी हुई चक्की के दानों पाटों से वैदिक ऋषि की माता अन्न पीसती थी और न ही यह संस्कृति वह चरखा है, जिसमें अनेक लोग अपनी प्रवृत्तियों को मूर्तिमान देखते है। सभ्यता ने अनेक रूप धारण किए हैं– वह दूसरों से समय–समय पर उधार के रूप में ग्रहण की गई है। हमारे सामाजिक और धार्मिक विश्वास समय के साथ प्रत्येक युग की सभ्यता के साथ बदलते रहे है। हमें संस्कृति को अविच्छिन्नता और निरंतरता के रूप में प्राप्त करना है, या फिर एकता की चेतना में।

एस० आबिद हुसैन ने अपनी पुस्तक 'भारत की राष्ट्रीय संस्कृति' में उल्लेख किया है, "यदि हम भारत के सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करते है तो पाते है कि जब कभी कोई नई विचारधारा, चाहे वह यहीं पैदा हुई या बाहर से आई, उसने विद्यमान मतभेदों को अस्थायी रूप से बढ़ा दिया। किंतु जैसे ही भारतीय मानस ने विविधता में एकता की प्रक्रिया प्रारंभ की, कुछ समय पश्चात ही एक नई संस्कृति की आधारशिला रखने हेतु उन परस्पर विरोधी तत्वों में सामंजस्य स्थापित हो गया।

बीसवीं सदी के प्रारंभ तक इतिहासकारो का मत रहा है कि भारत में संस्कृति की द्वितीय अवस्था, लगभग 1500 वर्ष ईसा पूर्व आर्यों के आगमन के बाद प्रारंभ हुई, इसलिए वह भारतीय संस्कृति प्राचीन संस्कृतियों में सबसे नवीन मानी जाती थी। किंतु इस सदी के चौथे दशक में भारत के पुरातत्व विभाग ने हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खोज करके यह प्रमाणित कर दिया है कि लगभग 5000 वर्ष पूर्व तक सिंधु घाटी में सभ्यता विद्यमान थी और यह सिर्फ सिंधु घाटी तक ही सीमित नहीं थी, वरन् देश के अन्य भागों में भी इसका विस्तार था।

चूंकि मोहनजोदड़ो और हड़प्पा की मोहरों पर अंकित चित्रलेखों का अभी तक अर्थ नहीं निकाला जा सका है, इसलिए सिंधु घाटी के प्राचीन निवासियों के मासिक और आध्यात्मिक जीवन के सम्बंध में कम ज्ञात है। प्राप्त सामग्री के आधार पर यह निष्कर्ष अवश्य निकाला गया है कि उनके धार्मिक विश्वास और व्यवहार कुछ सीमा तक हिंदुत्व की झलक देते है। सिंधु घाटी के लोगों द्वारा देवी की पूजा बाद की शक्ति में झलकती है। कुछ मुहरों पर शिव के समान भगवान का रूप देखा गया है। नदियों, पशुओं तथा पीपल की पूजा की जानकारी भी उसी काल से मिलती है।

लगभग 2000 ईसा पूर्व, जब उत्तर–पश्चिम भारत में सिंधु घाटी सभ्यता आक्रमणकारियों द्वारा नष्ट की जा रही थी, तब दक्षिण भारत में द्रविड़–तमिल संस्कृति विकास के बहुत ऊचें स्तर तक पहुंच चुकी थी। पुरातत्विक खोजों से, सिंधु घाटी संस्कृति और तमिल संस्कृति के बीच एक लम्बे समय तक व्यावसायिक व सांस्कृतिक आदान–प्रदान के संकेत मिलते हैं। स्पष्ट है कि भारत की संस्कृति के इतिहास में शून्य या रिक्तता की स्थिति नहीं रही।

बलूचिस्तान के कुछ भागों में बोली जाने वाली ब्रोही भाषा में लगभग 50 प्रतिशत द्रविड़ शब्दों का प्रयोग इस बात का निश्चित प्रमाण है कि इन दोनों सभ्यताओं में निकट संबंध थे। शोध कार्यों ने यह सामने रखा है कि इस विकसित सभ्यता में कृषि एवं अभियांत्रिकी उन्नत स्थिति में थी, नदियों पर सिंचाई हेतु बांध बनाए जाते थे, समुद्र एवं थल मार्ग से व्यापार होता था और द्रविड़ो की अपनी लिपि, अंक प्रणाली और कैलेंडर था।

ईसा के लगभग 1500 वर्ष पूर्व सिंधु घाटी की सभ्यता के विनाश के बाद उत्तर–पश्चिम अप्रवासी आर्यो ने उत्साह एवं जीवन शक्ति से भरपूर नई संस्कृति की नींव रखी। ये आर्य यद्यपि भौतिक सभ्यता में उतने आगे नही थे, लेकिन इनका आध्यात्मिक स्तर काफी ऊपर था। इन्होंने न तो मंदिरों का निर्माण किया और न ही मूर्तियों की पूजा की। वस्तुतः इन्हें सत्य का मार्ग ज्ञात था। ऋग्वैदिक काल का सात्विक रूप कालचक्र प्रवर्तन के अनुसार विकसित हुआ और उत्तर–वैदिक काल (1000–600 ई०पू०) में ही हेतु मूल जानने, परमात्मा की खोज, पुनर्जन्म के सिद्धांत और पुनर्जन्म (आवागमन) के चक्र से मुक्ति की खोज की जिज्ञासा जागृत हुई।

आर्यो का सबसे अधिक विस्तार 800–550 ई०पू० में हुआ और इसी अवधि में अनार्यों की संस्कृति का भी प्रभाव आर्य संस्कृति पर पड़ा। वैदिक सभ्यता बाद की हिंदू सभ्यता की ओर बढ़ चली। दक्षिण में आर्यो का जो भी प्रभुत्व या प्रभाव पड़ा, वह किसी भी रूप में विजय या आधिपत्य से नहीं जुड़ा है। यह एक सांस्कृतिक क्रिया थी, जो दक्षिण में गहरी पैठ बना रही थी। जनश्रुति यह है कि अगस्त मुनि, जिन्होंने पहला तमिल व्याकरण 'अगतियम' लिखा, आर्य मिशनरी थे, जो दक्षिण में वैदिक धर्म के प्रचार हेतु आए थे।

संभवतः यही समय था जब पौराणिक परंपराएं 'महाभारत' एवं 'रामायण' के रूप में स्थायित्व प्राप्त कर रही थी। धर्म के क्षेत्र में भी नई–नई बातें सामने आ रही थी, जो वैदिक धर्म से कई मायनों में भिन्न थी और कई मामलों में विपरीत थी। इन्हीं परिवर्तनों ने संभवतः बाद के हिंदू धर्म को एक सुनिश्चित आकार दिया। सामाजिक जीवन और भौतिक संस्कृति हिंदू समाज के चार वर्णो को स्थायी रूप प्रदान कर रही थी। लोहे का प्रयोग होने लगा था। हाथी पालतू पशु के रूप में मनुष्य के साथ रहने लगा। इसके अतिरिक्त आदिवासी सरदारों के कबीले अस्तित्व में आने लगे। जाति प्रभाव की जटिलता बढ़ने

लगी। इसका प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि स्वतंत्र कबीलों को भी आर्यो के समाज में उचित स्थान देना पड़ा, क्योंकि अधिकांश जीते गए इलाकों में इनकी संख्या बहुत अधिक थी। इन्होंने आर्यो की वैदिक संस्कृति को कई प्रकार से प्रभावित किया।

अनार्यो के प्रभाव का ही यह परिणाम था कि प्राचीन आर्य देवताओं ने अपना पूर्व महत्व खो दिया। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो पूरा उपमहाद्वीप एक संस्कृति के दायरे में आ गया। यह संस्कृति ऐसी थी, जिसमें आर्यो और अनार्यो ने बराबर का योगदान दिया था।

किंतु कालांतर में हिंदू धर्म में अनेक विसंगतियां आ गई। आडंबर बढ़ गया। कर्मकाण्डों की महत्ता सर्वोच्च हो गई। परिणामस्वरूप हिंदू दर्शन और विचारधारा को चुनौती दने वाले मत भी सामने आए। इनमें जैन और बौद्ध प्रमुख थे। इन्होंने जो सिद्धांत प्रतिपादित किए, वे कर्मकाण्डों से अछूते एवं अनावश्यक बंधनों से मुक्त थे। इन मतों की लोकप्रियता ने हिंदू विचारकों को प्रेरित ही नहीं, वरन् बाध्य भी किया कि वे हिंदू धर्म में परिवर्तन लाएं। इस प्रयास में कई सुधार हुए। हिंदू धर्म को लचीला और व्यापक बनाया गया ताकि उभरने वाले सभी मत इसमें समा सकें। परिणामस्वरूप षड्दर्शन का निर्माण हुआ। बौद्धिक और सांस्कृतिक में एक हलचल पैदा हुई। महाभारत और भगवतगीता पर मंथन हुआ। उपनिषद अपना दर्शन बिखेरने लगे। उपनिषद के अनुसार – "ईश्वर सत्य का नाम है और ईश्वर प्रेम की ही ओर हम बढ़ रहे है और फिर प्रेम में ही समा जाते है।

विष्णु और शिव के अलग–अलग उपासक बने। त्रिदेव की महिमा सामने आई। आलोचकों ने यह गलतफहमी फैलाई कि हिन्दू तीन ईश्वरों के भक्त है। ईश्वर के भिन्न–भिन्न गुणों को एक–दूसरे से नुमाया करके उनके अलग–अलग नाम दिए गए हैं, इससे भी भ्रम पैदा हुआ कि हिंदू 33 कोटि देवताओं को मानते है। लकिन यह गलतफहमी उचित नहीं है, क्योंकि असली सिद्धांत जिसकी अनुसार सब हिंदू विद्वान और बुद्धिमान एकमत हैं, वह यह है कि ईश्वर एक है और उसमें कोई शामिल नहीं है।

साथ ही साथ समानांतर रूप से चल रहे जैन और बौद्ध मतों ने भी भारतीय संस्कृति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। हालांकि वर्ण व्यवस्था में उतनी ढील तो नहीं आई, किंतु कुछ लचीलापन अवश्य आया। वैश्य जाति का को कुछ महत्व दिया गया। पशु बलि में इन मतों के कारण ही कमी आई, शाकाहार का महत्व बढ़ा कला, साहित्य, वास्तुकला भी इनके प्रभाव से बचे न रहे।

तथापि, इन मतों की ही वजह से हिंदू धर्म परिष्कृत और परिमार्जित हुआ तथा एक बार फिर जन मानस पर अपनी पकड़ बनाने में सफल रहा। गुप्तकाल हिंदू सभ्यता का स्वर्णिम काल माना जाता है। ए०एल० बाशम ने भी गुप्त वंश के उदय से लेकर हर्षवर्धन की मृत्यु तक के समय को भारतीय सभ्यता का गौरवशाली काल माना है।

गुप्त काल में लौकिक साहित्य ने उल्लेखनीय प्रगति की। इसमें चिकित्सा, गणित और ज्योतिषशास्त्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण माने जाते थे। संस्कृत ने पुनः धर्म, शास्त्र, साहित्य की भाषा के रूप में अपना स्थान बना लिया था। इस काल के महान शिक्षा शास्त्रियों का न केवल भारत के बल्कि विश्व के विज्ञान जगत में ऊंचा स्थान था। आर्यभट्ट, वाराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त के गणित और ज्योतिष में, चरक और सुश्रुत के चिकित्सा विज्ञान में किए गए शोधों ने दूसरे देश के वैज्ञानिकों का शताब्दियों तक मार्ग दर्शन किया तथा अरब और अन्य इस्लामी दशों के विज्ञान सम्बंधी विचारों पर सीधा तथा यूरोप पर अप्रत्यक्ष प्रभाव डाला। साहित्य की जिस शाखा ने इस काल में सबसे उल्लेखनीय प्रगति की, वह नाटक था। भास संभवतः पहले नाटककार थे, जिन्होंने राजदरबारी या सांसारिक नाटकों के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान प्राप्त किया। वे कालिदास के पूर्ववर्ती थे, जो ईसा पूर्व की चौथी या पांचवीं शताब्दी में रहे। कालिदास को सर्वमत से भारतीय नाटककारों और कवियों के सम्राट के रूप में मान्यता प्राप्त है। इनके अतिरिक्त, भवभूति, भारवि जैसे नाटककार उनके ही समकालीन थे। सातवीं शताब्दी में भर्तृहरि भी अपने क्षेत्र में अद्वितीय थे। वे थोड़े काव्य रत्नों के लिए विख्यात है, जिन्हें शतक कहा जाता है। इनमें कला कौशल और सिद्धांतों की गहराई परिलक्षित होती है। लेकिन गुप्त शासकों के कमजोर होते ही राजनीतिक बिखराव प्रारंभ हो गया। हालांकि हर्षवर्धन ने साम्राज्य निर्माण की एक कमजोर कोशिश अवश्य की, लेकिन ह्रास न रुका। बाणभट्ट ने हर्षचरित की रचना की, जिसकी सहायता से इस काल के बारे में जानकारी मिलती है। हर्षवर्धन के बाद लगभग 300 वर्षो का समय राजनैतिक फूट और बौद्धिक निष्क्रियता का समय था। देश अनेक छोटे–छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था और राष्ट्रीय एकता की भावना लगभग गायब ही हो गई थी।

आक्रमणकारी शक, हूण और गुर्जरों ने गुप्त साम्राज्य का अंत कर दिया और भारत में बस गए। ग्यारहवीं सदी तक ये जातियां संपूर्ण भारत में फैल गई थी और इन्होंने प्राचीन बड़े राज्यों के अवशेषों पर अपने बहुत से छोटे–छोटे राज्य स्थापित कर लिए थे। किंतु ये अपनी सांस्कृतिक पहचान नहीं बनाए रख सके। भारत के सांस्कृतिक जीवन को देखकर उन्होंने क्रमशः हिंदू धर्म और संस्कृति को अपना लिया। हिंदू समाज में ऊंचा स्थान प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने को प्राचीन क्षत्रिय वीरों का वंशज बताया ओर स्वयं को राजपूत कहने लगे।

इन राजपूतों ने हिंदू समाज के दुर्बल शरीर में ताजा रक्त भरा। राजपूत दरबार कला, साहित्य–कविता और नाटक के केंद्र बन गए। विशेषकर मालवा के राजा भोज ने (1018 ई० से 1055 ई०), जिन्हें द्वितीय विक्रमादित्य के नाम से जाना जाता है, कला और विद्या को संरक्षण प्रदान कर गुप्त सम्राटों की स्मृति ताजा की। इसके पहले कन्नौज के महींद्रपाल विख्यात नाटककार शेखर के संरक्षक थे। इस काल के अंत में बंगाल के राजा लक्ष्मण सेन ने गीत गोविंद के रचियिता जयदेव के संरक्षक के रूप में कविता और साहित्य को खूब बढ़ावा दिया। विद्याध्ययन और साहित्य का यह नवजागरण कश्मीर भी पहुचां। सोमदेव ने 'कथा–सरित्सागर' और कल्हण ने 'राजतरंगिणी' की रचना की।

राजपूतों के अधीन शिल्पकला ने भी बहुत विकास किया। चित्तौड़, रणथंभौर, मांडू और ग्वालियर के किले तथा खजुराहो (बुंदेलखण्ड) और भुवनेश्वर के मंदिर उनके यश के प्रमाण है। लेकिन इस काल में संस्कृति का प्रवाह उल्टा हो गया। कई तरह की सामाजिक बुराइयां सामने आ गई जैसे बाल विवाह, बालिका वध, सती प्रथा आदि।

इस समय, दक्षिण भारत सभ्यता के अतिरेक तथा विदेशी आक्रमणकारियों के प्रभावों से मुक्त था। इसलिए वह उत्तर की भांति राजनीतिक फूट का शिकार नहीं हुआ। चालुक्यों, राष्ट्रकूटों, पल्लवों, चोलों और पांड्यों ने शक्तिशाली राज्यों की स्थापना की और आर्य संस्कृति को बढ़ावा दिया। दक्षिण में अनुकूल परिस्थितियों ने बौद्धिक जीवन को निष्क्रियता से बचा लिया। यहां यह महत्वपूर्ण बन गया। ईसा के बाद 7वीं शताब्दी में शैव तथा वैष्णव संतों के दो धर्म संघों ने अपनी धार्मिक भावना के उत्साह से प्रेरित होकर प्रेम और उपासना के पंथ को प्रचारित करने हेतु पुराणों की शिक्षा को तमिल छंदों में प्रस्तुत किया, जिसे बाद में भक्ति कहा गया।

दूसरी तरफ शंकराचार्य ने उत्तर मीमांसा की अपनी टीका के द्वारा वेदांत धर्म को पुनरुज्जीवित किया। फिर रामानुज ने अपनी व्याख्याएं दी, माधवाचार्य ने भी 'एकमवाद्वितीयम' को अपने तरीके से रखा। कुछ इतिहासकार इस पुनरुत्थान को विदेशी यानी क्रिश्चियन धर्म की प्रतिक्रिया मानते है, किंतु डॉ० ताराचंद ने अपनी पुस्तक 'भारतीय संस्कृति पर इस्लाम का प्रभाव' में यह सिद्ध किया है कि ये आंदोलन इस्लाम से प्रेरित थे। बहरहाल धार्मिक जीवन में गतिशीलता तो आई।

भगवतपुराण की रचना तमिल भूमि में हुई। कांसे की ढ़लाई का कार्य भी यही प्रारंभ हुआ। दक्षिण भारत के इन राज्यों ने कला और वास्तुकला के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान किया। पल्लव शैली में बना मामल्लपुरम का मंदिर पल्लव राजाओं की देन है। द्रविड़ शैली में राजराज चोल ने तंजौर मंदिर का निर्माण करवाया। राष्ट्रकूटों की छत्रछाया में ऐलोरा का कैलाश मंदिर बना। हॉयसालों ने हॉसलेश्वर मंदर का निर्माण कराया। चित्रकला भी इस काल में काफी विकसित हुई।

लगभग इसी समय अरब के मुसलमान सिंध आए और इस क्षेत्र पर अपना आधिपत्य जमाया। इन्हें अपना धर्म मानने, उसे फैलाने की भी स्वतंत्रता हासिल हुई। किंतु दिल्ली सल्तनत की स्थापना ने वह मंच प्रदान किया, जहां हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों का सही मेल हुआ। सांस्कृतिक समझ का विकास हुआ। सल्तनत की स्थापना एक नए युग का भी सकें थी। हर्ष की मृत्यु के बाद 500 वर्षो में पहली बार भारत में पर्याप्त राजनीतिक एकता आई।

राजनैतिक एकता के इस नए दौर में वास्तुकला को नए आयाम मिले। चित्रकला की नई शैली विकसित हुई। संगीत में नए प्राण फूंके गए। जौनपुर के सुल्तान हुसैन शर्की और बीजापुर के इब्राहिम आदिल शाह उस दौर में संगीत की पहचान थे। सूफी चिंतन और भक्ति धारा के मेल से कुछ धार्मिक माहौल बना। एस० आबिद हुसैन कहते है, "यद्यपि वे धर्म को अनुष्ठानों और कर्मकाण्डों के बंधन से मुक्त तो न करा सके, किंतु धार्मिक निष्क्रियता को तोड़ा और इसे एक नए आंदोलन का रूप, प्रवाह, ताजगी और जीवन दिया। ऊपरी तौर पर वे हिंदुत्व और इस्लाम की धाराओं को नहीं मिला सके, किंतु उन्होंने दर्शाया कि वे झरने, जिससे उन्हें जीवन मिलता है। उन्होंनें भारत में धार्मिक सद्भावना का वातावरण तैयार किया। जो मध्ययुग में देखने को नहीं मिला।" इसके अतिरिक्त शास्त्रीय संस्कृत के स्थान पर बोलचाल की भाषा कविताओं में आई। उत्तर भारत में उर्दू सामान्य भाषा बन गई।

सामान्य तौर पर दक्षिण भारत के राज्यों में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच करीबी और सौहार्दपूर्ण सम्बंध देखने को मिला। बहमनी साम्राज्य के विघटन के बाद अस्तित्व में आए राज्यों ने भी उदार परंपरा कायम रखी। वस्तुतः दक्षिण में ही उर्दू साहित्यिक भाषा के रूप में विकसित हो पाई। हिंदू–मुस्लिम सौहार्द के सम्बंध में कश्मीर के राजा जैन–उल–अबीदीन का संदर्भ अपरिहार्य हो जाता है। हिंदू संस्कृति की व्यापक समझ हेतु संस्कृत की पुस्तकों का फारसी में अनुवाद कराने के अतिरिक्त उसने कला और हस्तशिल्प को पूरा भरपूर संरक्षण प्रदान किया। इसे हम सम्राट अकबर का अग्रगामी मान सकते है।

लोदी सुल्तानों के चरमराते साम्राज्य को बाबर ने 1526 में जीतकर जिस मुगल साम्राज्य की नींव डाली, उसी के सम्राट अकबर महान ने भारत को पुनः राष्ट्रीय एकजुटता के सूत्र में बांधा और एक नई संस्कृति का सूत्रपात किया, जिसे हम हिंदुस्तानी संस्कृति के नाम से जानते है। नए भारत राष्ट्र की सबसे महत्वपूर्ण विशिष्टता, जो अकबर के द्वारा उत्पन्न की गई, यह थी कि वह समुदाय की धार्मिकता पर नहीं बल्कि उसी राज्य की नागरिकता पर आधारित थी। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के तुरंत बाद, सामुदायिक जीवन के आधार के रूप में राज्य को धर्म का स्थान ले लेना चाहिए था, किंतु परंपराओं की शक्ति इतनी प्रबल थी कि यह आवश्यक परिवर्तन मुगल वंश के उत्थान तक रुका रहा।

धर्म निरपेक्ष और गैर–सांप्रदायिक राज्य की अवधारणा अकबर के दिमाग में बिल्कुल स्पष्ट थी। ऐसा लगता है कि अकबर पूरी तरह सचेत था कि राज्य की एकता हेतु उसने जो नींव रखी है वह इस बात पर निर्भर करती है कि आम जनता का राजा के प्रति कितना लगाव है। इसीलिए अकबर ने जनता से सीधे सम्पर्क पर बल दिया, जो किसी मुसलमान राजा ने सोचा भी न होगा। अकबर ने प्रशासनिक दृष्टि से भी कई सुधार किए, ताकि भेदभाव न रहे। इसी तरह सती प्रथा को बंद कराकर आधुनिक काल के राजाराम मोहन राय को अग्रगामी बनने का श्रेय भी प्राप्त किया।

साहित्य के क्षेत्र में अनुवाद कार्य बड़े जोरों से चला। अथर्ववेद, रामायण, महाभारत, उपनिषद भगवतद्गीता इत्यादि का फारसी में अनुवाद कराया गया। इतिहास लेखन की नींव डाली। वृंदावनदास, सुजान राय, चंद्रभान ब्रह्म, भीमसेन और ईश्वर दास की कृतियां किसी भी समकालीन मुसलमान इतिहासकारों की कृतियों किसी भी समकालीन मुसलमान इतिहासकारों की कृतियों से

किसी भी मायने में कम नहीं थीं। अब्दुल रहीम खान–ए–खाना, गंगा, नरहरि, बीरबल, केशवदास, बिहारी, देव, रसखान उस काल के कुछ ऐसे नाम हैं, जो कविता को बड़ी ऊंचाइयों तक ले गए।

वास्तुकला भी उतनी ही विकसित हुई, जितनी अन्य विधाएं। हुमायूं का मकबरा, लाल किया, ताजमहल, बुलंद दरवाजा, जामा मस्जिद इत्यादि कुछ ऐसी इमारतें हैं, जो मुगलकालीन संस्कृति की परिचायक है। आबिद हुसैन लिखते है, "पर्शियन के साथ भारतीय मस्तिष्क के सहयोग ताकि भारतीय पदार्थों के साथ साहसिक प्रयोगों ने एक नयी शैली को जन्म दिया, जिसमें विभिन्न तत्व पूर्ण समन्वय के साथ ऐसे मिले हुए है कि अब भारतीय और विदेशियों के रूप में उनका विश्लेषण यदि संभव भी हो तो वह कोई अर्थ नहीं रखता।"

इस काल में चित्रकला ने भी प्राचीन भारतीय शैली के साथ तुर्की–ईरानी शैली को मिलाकर एक नई शैली विकसित की, जिसमें दोनों का आकर्षण था। हिन्दू शैली के यथार्थवादी और प्रभावोत्पादक सादगी के प्रशंसक अकबर ने एक नई शैली बनानी चाही, जिसमें इसकी सादगी और पर्शियन शैली की सूक्ष्मता का समावेश हो। इसीलिए उसने अपने राजदरबार में चित्रकला अकादमी के एक ऐसे अंग की स्थापना की, जहां दोनों प्रकार के कलाकार एक साथ कार्य करते थे।

मुगल सम्राट जहांगीर के काल से ही यूरोपीयनों का आगमन प्रारंभ हो गया था। व्यापार के नाम पर इनके केंद्र अलग–अलग बंदरगाहों पर स्थापित हुए। कुछ नई चीजें भी ये लाए, जैसे– भारत में आलू पुर्तगाली लाए। तम्बाकू, अनानास, मिर्च भी इन्हीं की देन है।

यहां यह उल्लेख करना अनावश्यक न होगा कि मुगलों के समय सिख एक लड़ाकू कौम के रूप में स्थापित हो चुके थे। लेकिन अंग्रेजों ने अपनी सत्ता ऐसे समय में जमाई जब मुगल साम्राज्य का पतन हो रहा था, सिख कमजोर थे तथा मराठों का भी अस्तित्व नहीं था। सांस्कृतिक ह्रास भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो रहा था।

जहां तक अंग्रेजो के सांस्कृतिक प्रभाव का प्रश्न है, भारतीय मानस पर उसकी विशेष छाप न पड़ी। रेलवे और टेलीग्राफ आदि के रूप में यांत्रिक विकास ही पश्चिमी सभ्यता का एकमात्र पहलू था, जिसने लोगों में सामान्य तौर पर आश्चर्य एवं प्रशंसा के भाव पैदा किए। अंग्रेजी संस्कृति केवल कलकत्ता तथा कुछ अन्य शहरों में एक छोटे से समूह को छोड़कर शेष भारतीयों पर कोई प्रभाव दिखाने में असफल रहीं आबिद हुसैन ने इंगित किया है, "पश्चिमी सभ्यता का अंतर्निहित गुण उसकी आधुनिक वैज्ञानिक मनोवृति और व्यवहारिक कार्यकुशलता में निहित था। किंतु दुर्भाग्यवश भारतीय समाज की रक्तहीन काया में जिस प्रकार आधुनिकता का ताजा रक्त चढ़ाया गया, उससे महत्वपूर्ण घटक तो न मिल पाए, बल्कि अच्छा होने की बजाय बुरा अधिक हुआ।"

मुगलो की भांति अंग्रेजों ने कभी भी भारत को अपना घर नहीं माना। उन पर उनकी जातीय सर्वोच्चता का ऐसा भूत हावी रहा कि वे कभी भारतीयों के करीब न आ पाए। खान–पान, पहनावा, भाषा इत्यादि को लेकर उन्हें अजबी सनक घेरे रहती। इसी सनक को कुछ भारतीयों ने भी अपनाया और अंग्रेज होने का भ्रम पाले रहे। अंग्रेजो न स्वयं को भारतीय संस्कृति से अलग रखने को जो निर्णय लिया था, उसने ऐसा वातावण बनाया कि व्यापक रूप से भारतीय संस्कृति प्रभावित न हो पाई।

हां, ब्रिटिश राज ने भारत को नुकसान अवश्य पहुंचाया। आर्थिक शोषण किया। परम्परागत हस्तशिल्प एवं कला को नष्ट किया। भूमि को खरीद–फरोख्त की वस्तु बना दिया। असंख्य भारतीयों को मौत के घाट उतारा। और, इन्ही सब की प्रतिक्रिया स्वरूप उनके विरुद्ध ऐसा तूफान उठा कि ब्रिटिश राज की जड़े हिल गई। हालांकि जाते–जाते देश को बांट अवश्य दिया, लेकिन भारतीयों को जगा भी दिया कि यदि देश की एकता व अखंडता के प्रश्न पर मौन रहे तो परिणाम भयानक होंगे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ऐसे प्रयास किए गए कि देश एकजुट रहे। सुधारों की गति तेज की गई। दलितों, पिछडों, महिलाओं की बेहतरी हेतु कानून बने। देश की अखंडता के लिए जाति, धर्म, भाषा की विभाजक शक्तियों को नियंत्रित करने की आवश्यकता महसूस हुई। विविधता में एकता का महामंत्र पुनः उद्घोषित हुआ। संस्कृति को अक्षुण्ण रखते हुए नये विचारों का भी स्वागत हुआ। आज का भारत एक ऐसे दौर से गुजर रहा है, जिसे हम संक्रमणकाल कह सकते है। आधुनिकता और परंपरा के सही संतुलन की आवश्यकता है। कथनी–करनी का अंतर मिटाना है और 'सत्यम् शिवम सुंदरम' को फिर से अपनाना है। यद्यपि, आज ऐसे कई खतरे मौजूद है, जो देश की एकता के लिए ठीक नही है, फिर भी हम अपनी राजनीतिक इच्छाशक्ति और सदेच्छा से देश को पुनः उन्हीं बुलंदियो की ओर ले जा सकते है, जिन्हे देखकर पूरा विश्व ईर्ष्या करता था। हमें अपनी सांस्कृतिक धरोहर को संभालना है तथा जय जवान, जय किसान और जय विज्ञान के नारे को अक्षरशः सही साबित कर दिखना है।

भारत का इतिहास हजारो वर्षो संस्कृतियों के सम्मिलन का इतिहास रहा है। भूमंडलीकरण के इस दौर में भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की राह पर अग्रसर है और सांस्कृतिक रूप से समृद्ध इस महान देश में आज विश्व स्तर पर रुचि ली जा रही है।

भारत रंगो का, मेलों का, पर्वों का, आस्था के उत्सवों का भी देश है। पूरे वर्ष यहां कोई न कोई सांस्कृतिक गमक रहती ही है। गणेश चतुर्थी के दौरान महाराष्ट्र, दुर्गा पूजा के दौरान बंगाल, रथयात्रा के दौरान ओडिशा, बैसाखी के दौरान पंजाब, मकर संक्रांति के दौरान नवान्न पर्व पोंगल, पशु मेले का सोनपुर, हस्तशिल्प का सूरजकुंड, कुंभ के दौरान हरिद्वार–उज्जैन, ओणम के दौरान केरल इत्यादि। दुनिया की विभिन्न नागरिकताएं भारत की इन अद्भुत सांस्कृतिक रंगतों की ओर भी आकृष्ट है। विदेशी युगल भारतीय रीति–रिवाजों के अनुरूप दाम्पत्य बंधन में, बंधने के लिए भारत चले आते है, नवरात्रि के दौरान विदेशी पर्यटकों का रेला गुजरात आ पहुंचता है और डांडिया–गरबा में झूम–झूम कर थिरकता है। देशी–विदशी पर्यटक होली के दौरान ब्रज और मणिपुर में, दशहरे के दौरान मैसूर में ओर निश्चित तिथियों को विभिन्न तीर्थ स्थानों पर सैकड़ो–सहस्त्रों की संख्या में पहुंच जाते है। ठीक ऐसी ही स्थिति सांस्कृतिक

रूप से समृद्ध अन्य देश में भी है। मैक्सिको का 'डे ऑव डैड' तथा रियो डी जेनिरो (ब्राजील) का कार्निवाल बड़े पैमाने पर सांस्कृतिक उत्सव है। इसी प्रकार सेशल्स का क्रियोल उत्सव भी विश्व में जाना–पहचाना सांस्कृतिक कार्यक्रम है।

लोग अपनी सांस्कृतिक पहचान से रूबरू होने, अपने लोक रंगो में स्वयं को फिर से रंग कर ताजा होने के लिए सांस्कृतिक कार्यक्रमों में खिंचे चले आते है।

दुनिया भर में फैले करोड़ों प्रवासी भारतवंशी भी समय–समय पर भारत आकर अपनी सांकृतिक जड़ों से जुड़ने के साथ–साथ भारत की आर्थिक प्रगति में योगदान दे सकते है। हमारे 'गरबा' में भी 'सालसा' और 'साम्बा' के समान भौगोलिक सीमाओं को लांघकर लोकप्रिय होने की अपार संभावनाएं निहित है।

उद्देश्य : संग्रहालय में संग्रहित वस्तुओं से विभिन्न काल की संस्कृति से परिचित हुआ जा सकता है। इस लेख में जयपुर ,अलवर, भरतपुर के संग्रहालयों में प्रदर्शित वस्तुओं को संस्कृति से जोड़ कर वर्तमान काल में संग्रहालयों की प्रासांगिकता पर प्रकाश डाला गया है। वर्तमान में संग्रहालयों की बढ़ती भूमिका ने क्षेत्रीय स्तर पर लोक संस्कृति की पहचान बनाये रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हालांकि संग्रहालयों में राजा–महाराजाओं के जीवन से जुड़ी चीजों को प्रदर्शित किया जाता है। परंतु उन वस्तुओं से तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक एवं सास्कृतिक परिस्थितियों की भी जानकारी मिलती है।

अलबर्ट हॉल संग्रहालय, जयपुर

यह राज्य का सबसे पुराना संग्रहालय है और राजस्थान के राज्य संग्रहालय के रूप में काम करता है। यह इमारत न्यू गेट के विपरीत शहर की दीवार के बाद रामनिवास उद्यान में स्थित है और यह इण्डो–सारसैनिक वास्तुकला का एक अच्छा उदाहरण है। यह सरकार द्वारा संचालित है।

इण्डो–सारसैनिक वास्तुकला

इस वास्तु कला को इण्डो–गौथिक, मुगल–गौथिक, नियो–मुगल हिन्दु–शैली भी कहा जाता है। उन्नीसवी शताब्दी के बाद भारत में विशेष रूप से सार्वजनिक तथा सरकारी भवनों में इस शैली का उपयोग किया जाता था। यूरोप में मध्यपूर्व तथा उत्तरी अफ्रीका अरबी भाषी मुस्लिम लोगो के लिए मध्य युग मे इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द 'सारकेन' था। यह शैली इण्डो–इस्लामिक वास्तुकला से विशेष रूप से प्रभावित रही है।

इतिहास

इस इमारत को सर सेम्यूअल स्वींगटन जैकब द्वारा डिजाईन किया गया था, जो कि मीर तुजुमुल हौसिन की सहायता से बनाया गया। इसे 1887 में सार्वजनिक संग्रहालय के रूप मे खोल दिया गया था।

महाराजा राम सिंह प्रारम्भ में चाहते थे कि यह इमारत एक टाउन हॉल हो, लेकिन उनके उत्तराधिकारी माधव सिंह द्वितीय ने इसे एक संग्रहालय का रूप दे दिया। इसका नाम किंग ऐडवर्ड सप्तम (अलबर्ट एडवर्ड) के नाम पर रखा गया।

संग्रह

संग्रहालय में चित्रों, कालीनों, गहनों, हाथी दांत, पत्थर, धातु की मूर्तियों और क्रिस्टल कलाकृतियों का संग्रह है। संग्रह में गुप्त, कुषाण, दिल्ली सल्तनत, मुगल व ब्रिटिश काल के सिक्के शामिल है। मिश्र की मम्मी इस संग्रहालय का मुख्य आकर्षण है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न काल की लोक संस्कृतियों का भी संग्रह किया गया है।

अलवर संग्रहालय

अलवर में सिटी पैलेस में स्थित सरकारी संग्रहालय 1940 में तत्कालीन शासक ने बनवाया था। संग्रहालय का संपूर्ण संग्रह शाही परिवार से आया था, जिसमें 234 मूर्तियां, 11 शिलालेख, 9702 सिक्के, 35 धातु की वस्तुएं, 2565 पेंटिंग और पांडुलिपियां, 2270 हथियार और स्थानीय कला, शिल्प और संगीत वाद्ययंत्रों की 1809 वस्तुएं शामिल है।अलवर के सरकारी संग्रहालय में क्षेत्र के इतिहास का एक विशाल संग्रह है, जिस पर मुगल और राजपूत राजाओं का शासन था। सरकारी संग्रहालय का गठन सिटी पैलेस के एक हिस्से को परिवर्तित करके किया गया था, जिसमें महल से कई वस्तुओं का भी प्रदर्शन होता है।

राजाओं और विद्वानों द्वारा ताड़ के पत्तों पर पेंटिंग और लेखन संग्रहालय में देखा जा सकता है। उनके द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली लड़ाइयों और हथियारों को चित्रों में चित्रित किया गया है और उन दिनों में इस्तेमाल किए गए हथियारों का एक संग्रह भी है।विभिन्न प्रकार के फारसी और संस्कृत पांडुलिपियां, संगीत वाद्ययंत्र, बिदरी काम, भरवां जानवर, लघु चित्र, मिट्टी के बर्तनों और पीतल के काम आदि, जो सिलोन और बंगाल जैसे दूर के स्थानों से लाए गए है, सरकारी संग्रहालय में देखे जा सकते है। आइवरी का काम और लाख की मूर्तियां भी कुछ संग्रह है।

अलवर संग्रहालय का इतिहास

इस बहुउद्देश्यीय संग्रहालय को वर्ष 1908 में वापस स्थापित किया गया था। लगभग एक शताब्दी से अब यह अपने समृद्ध भंडार में जुड़ रहा है।अलवर में पर्यटक आकर्षण के बीच सबसे महत्वपूर्ण अलवर संग्रहालय है, जो कला और कलाकृतियों का एक समृद्ध भंडार है। राजस्थान की इस शाही भूमि की सांस्कृतिक विरासत को अच्छी तरह से दर्शाता है। अवलर के सिटी पैलेस में विनय विलास महल इस अद्भुत संग्रहालय का घर है, जो न केवल देश के विभिन्न हिस्सों से, बल्कि दुनिया से आगंतुकों को लुभाता है। अलवर संग्रहालय वास्तव में अनूठा है, और इसमें विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ शामिल है।

अलवर संग्रहालय का वर्णन

अलवर सरकार संग्रहालय में तीन अलग–अलग खंड है और इनमें से प्रत्येक महत्वपूर्ण है। इसमें कीमती फारसी, उर्दू, अरबी और संस्कृत पांडुलिपियां और साथ ही मुगल ओर राजपूत चित्रकला से संबंधित कुछ सबसे सुंदर पेंटिंग शामिल है। चूंकि वर्गों को एक बड़े हॉल में रखा गया है। इनमें से, दूसरे खंड में विभिन्न महत्वपूर्ण चित्रों का संग्रह है उदाहरण के लिए ैश्कप के गुलिस्तान (गुलाब

के बाग), बोसान (बसंत का बाग) के साथ वकियात–ए–बाबरी (मुगल सम्राट बाबर की आत्मकथा) दुर्लभ फारसी दस्तावेज जो यहां पाए गये है। चित्रों के लिए, वे आगे उप शैलियों में विभाजित है और देखने में बस अद्भुत है।

अलवर सरकार संग्रहालय के पहले खंड में मुख्य रूप से पुरातात्विक अवशेष शामिल है। अति सुंदर मूर्तियाँ और बहुमूल्य शिलालेख जो इस क्षेत्र के इतिहास पर बहुत प्रकाश डालते है, संग्रहालय के इस हिस्से में रखे गए है। यहां शाही राजघराने के लिए शिकार भ्रमण पर जाने और जंगली जानवरों का शिकार करने की प्रथा थी। संग्रहालय में बाघों, तेंदुओं और शेरों की खाल भी प्रदर्शित की गई थी, जिन्हें अलवर राज्य के पूर्व शासक द्वारा गोली मार दी गई थी ओर बाद में उनके द्वारा संग्रहालय में प्रस्तुत किया गया था। यह संग्रह का एक बड़ा हिस्सा बनाता है।

संग्रहालय के तीसरे खंड में प्रदर्शन पर भारतीय शस्त्रागार है जिसमें शेरों के पैर और हाथी दांत, तलवार, पिस्तौल, राइफल, खंजर और विभिन्न प्रकार के हथियारों के साथ चांदी की मेज है। इस संग्रहालय में अलवर स्कूल ऑफ पेंटर्स द्वारा चित्रित महाभारत की प्रति आगंतुक का ध्यान आकर्षित करने में निश्चित रूप से विफल नहीं होगी।अलवर सरकारी संग्रहालय भारत में प्रदर्शित की जाने वाली कुछ अन्य वस्तुओं में जयपुर, मुल्तान, सीलोन और बंगाल से संगीत वाद्ययंत्र, बिदरी का काम, हाथी दांत का काम, पीतल ओर मिट्टी के बर्तनों के काम और भरवां जानवर शामिल है।

भरतपुर संग्रहालय

यह सरकारी संग्रहालय, भरतपुर ऐतिहासिक लोहागढ़ किले के अंदर स्थित है, यह संग्रहालय भरतपुर की पुरातात्विक संपदा का एक समृद्ध संग्रह प्रदर्शित करता है। 19 वीं शताब्दी की पहली छमाही में महाराजा बलवंत सिंह के शासनकाल के दौरान निर्मित कचहरी कलां और कामरा खस की इमारतें और अन्य प्रदर्शनियां इस क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से एकत्र की इमारतें और अन्य प्रदर्शनियां इस क्षेत्र के विभिन्न स्थानों से एकत्र की गई और शुरू में महाराजा सवाई बृजेश सिंह के समर्थन में सार्वजनिक पुस्तकालय में प्रदर्शित की गई। 1939–1944 ई. में, इन्हें कचहरी किले की वर्तमान इमारत में स्थानांतरित कर दिया गया, यह संग्रहालय 11 नवंबर, 1944 को जनता के लिए खोला गया।

यह संग्रहालय सिक्कों, हथियारों, सजावटी कला वस्तुओं, मूर्तियों, हथियारों, शिलालेखों आदि का एक अनूठा ओर बड़ा संग्रह प्रदर्शित करता है। यह संग्रहालय 4000 प्राचीन वस्तुओं से ऊपर है। जिस इमारत के अंदर यह संग्रहालय स्थित है वह कलात्मक सौंदर्य का अद्भुत उदाहरण है। भरतपुर सरकार संग्रहालय सबसे विशिष्ट पुरातात्विक संसाधनों और प्राचीन कलाकृतियों को प्रदर्शित करता है। भरतपुर का सरकारी संग्रहालय प्राचीन स्मृति चिन्ह का निवास है जो दुर्लभ गुणवत्ता के है। यह संग्रहालय एक बड़ी इमारत थी जिसे शुरुआत में कचहरी कलां के नाम से जाना जाता था। यह भरतपुर जिले के शासकों का खंड था। बाद में, 1944 ई. में कचहरी कलां को सरकारी संग्रहालय में बदल दिया गया।

कामरा खास या भरतपुर राजाओं का निजी ब्लॉक संग्रहालय का एक मुख्य हिस्सा बन गया। यह संग्रहालय वास्तव में भरतपुर के राजाओं की महिमा और समृद्धि को दर्शाता है। संग्रहालय के महत्वपूर्ण प्रदर्शन और स्मृति चिन्ह बहुत अच्छी तरह से बनाए रखा गया है और संग्रहालय के अंदर ठीक से संरक्षित है।

भरतपुर संग्रहालय बहुत ही भव्य रूप से कई कीमती मूर्तियों से सजाया गया है, जो कि मेलहा, बयाना, नोह और बरेह के पुराने गांवो की पुरातात्विक खुदाई के दौरान खोजी गई थी। यह संग्रहालय भरतपुर के प्रमुख पर्यटक आकर्षणों में से एक है। दुनिया के किसी भी हिस्से से आने वाले पर्यटक संग्रहालय की सुंदरता से बहुत आकर्षित होते है।

संग्रहालय की प्रदर्शनी

भरतपुर संग्रहालय में विभिन्न प्रकार के प्रदर्शन होते है जिनमें धातु की वस्तुएं, लघु चित्र, पत्थर और मूर्तियां, टेराकोटा, स्थानीय कला और शिल्प, हथियार अनुभाग, सिक्के, शिलालेख आदि शामिल है, 1 से 19 वीं शताब्दी ईस्वी तक डेटिंग, जो पुराने गांवों की खुदाई के दौरान पाए गए थे। संग्रहालय की अन्य प्रमुख प्रदर्शनी में पेंटिंग, जूलॉजिकल नमूने, पांडुलिपियां, हथियार संग्रह आदि है। संग्रहालय की आर्ट गैलरी में लघु पेंटिंग, अभ्रक और पुराने लिथोपॉपर्स, रॉयल पेंटिंग आदि प्रदर्शित है।

निष्कर्ष

इस प्रकार जयपुर, अलवर एवं भरतपुर के संग्रहालयों में रखी वस्तुओं से तत्कालीन समाज, अर्थव्यवस्था, राजनीति, धर्म एवं साकृतिक निरन्तरता के अवशेषों को एक कड़ी के रूप में जोड़कर लोक संस्कृति के स्वरूप की व्याख्या की जा सकती है। इनमें रखे अवशेष भौतिक संस्कृति ही है, जिनकी व्याख्या नये रूप में की जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथसूची

विजय, दिवेश : सांस्कृतिक इतिहास एक तुलनात्मक सर्वेक्षण क्ट, 2015

सहरिया, डॉ. फूल सिंह : अलवर इतिहास, मेवाती साहित्य अकादमी संस्थान, अलवर, 2016

बालोत, मंथी सिंह एवं सहरिया, डॉ. फूल सिंह : मेवात का इतिहास और संस्कृति, मेवाती साहित्य अकादमी संस्थान, अलवर, 2016

गुप्ता, मोहनलाल : जयपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2016

गुप्ता, मोहनलाल : भरतपुर संभाग का जिलेवार सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक अध्ययन, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, 2012

शर्मा, गणेश दत्त : पूर्वी राजस्थान का एवं पुरातात्विक वैभव, खण्डेलवाल पब्लिकेशन, 2016

वर्मा, रामवीर सिंह : लोहागढ़ की यशोगाथा, प्रदीप प्रकाशन भरतपुर, 2013

सिंह, तनुजा : भरतपुर की कला सम्पदा, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2011

हडसन, कीन्नथ : ए सोशल हिस्ट्री ऑफ म्युजियम्स, द मैकमिलन प्रेस, 1975

बनर्जी, नीलरतन : म्युजियम एण्ड कल्चरल हेरिटेज, दिल्ली, 1990